# युगऋषि एवं उनकी योजना

(समझें, समझाएँ एवं लाभ उठाएँ)

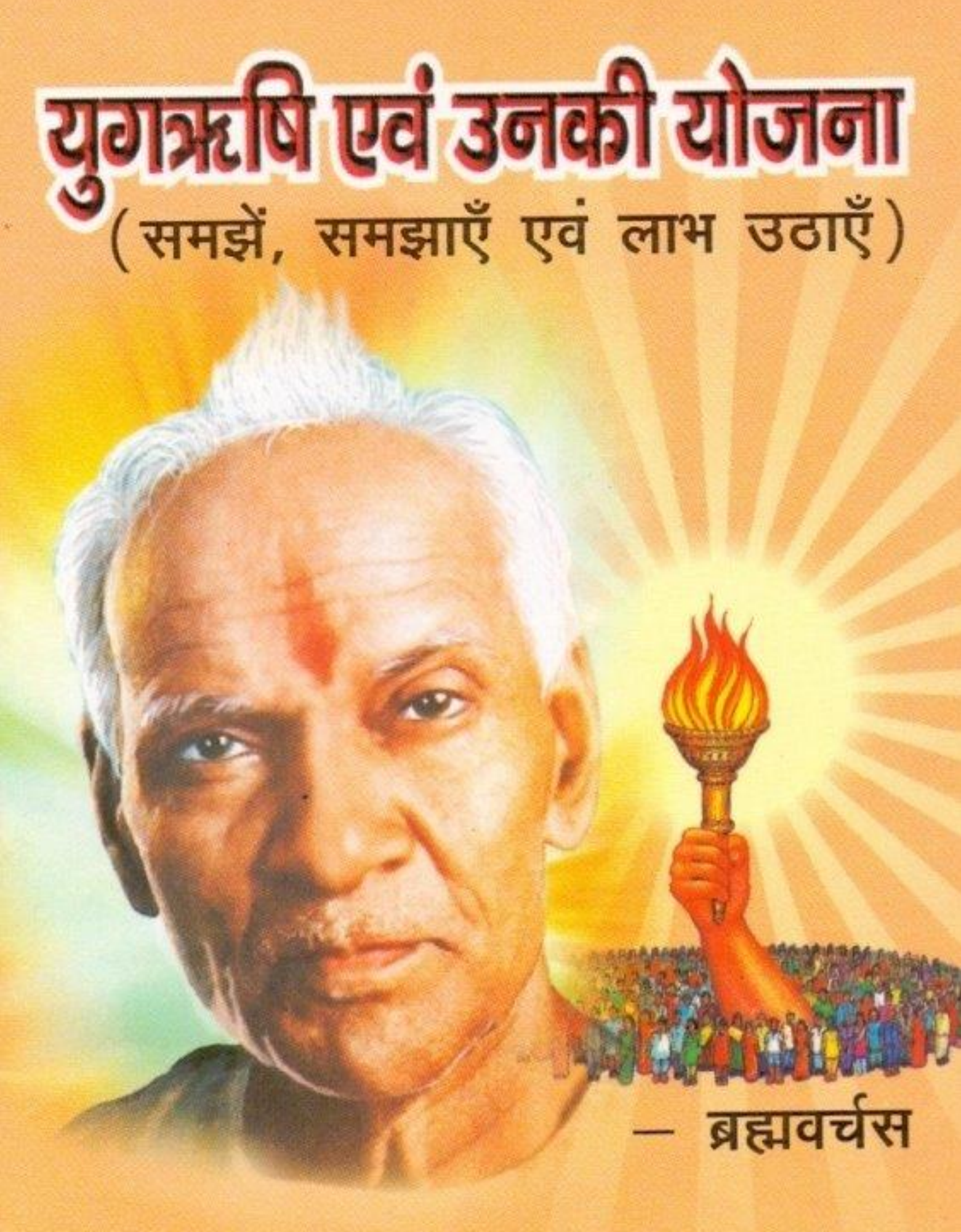

— ब्रह्मवर्चस

# युगऋषि और उसकी योजना

## समझें-समझाएँ, लाभ उठाएँ

## उत्साह की सार्थक दिशा

युगऋषि (परम पूज्य गुरुदेव) की जन्मशताब्दी मनाने का उत्साह उनके स्नेह बन्धन में बँधे हर परिजन के मन में उमड़ रहा है। यह बात सच है, किन्तु उस उत्साह की दिशाधारा की, उसके अनुरूप साधन-सामर्थ्य की समीक्षा करते हुए उसकी समुचित व्यवस्था भी तो करनी पड़ेगी।

भावनाशील बच्चों में अपने माता-पिता को संतुष्ट करने का उत्साह बहुधा उमड़ा करता है। वे कभी अपनी खिलौना मोटर में बिठाकर उन्हें सैर कराने का उत्साह दिखाते हैं, कभी अकेले सब काम देख लेने का उत्साह दिखाते हुए उन्हें विश्राम करने को कहते हैं, तो कभी अपने खेल के बर्तनों में तरह-तरह के व्यंजन बनाकर उन्हें इच्छित भोजन कराने की उमंग प्रकट करते

हैं। माता-पिता उनकी भावना देखकर, भोली-भाली बातें सुनकर मुदित भी होते हैं। परन्तु उन्हें वास्तविक हर्ष और गौरव की अनुभूति तब होती है, जब बच्चे अपने गुण, कर्म, स्वभाव में परिष्कार और विकास करके स्वयं को वास्तव में कुछ कर सकने की स्थिति में ले आते हैं।

जन्मशताब्दी पर समारोह करने, उसके लिए तन, मन, धन की बाजी लगा देने का उत्साह ऊपर वर्णित भोले बच्चों के उत्साह जैसा ही कहा जा सकता है। हमारे आध्यात्मिक माता-पिता उससे मन मोद का अनुभव तो कर सकते हैं, किन्तु उन्हें आंतरिक हर्ष और गौरव की अनुभूति तो तभी होगी, जब हम उनके जीवन लक्ष्य 'युग निर्माण' में अपनी छोटी-सी ही सही- किन्तु प्रौढ़ भूमिका निभाने की अपनी योग्यता बढ़ाएँ और जिम्मेदारी सँभालें।

हमारा यह उत्साह भी ठीक हो सकता है कि हम युगऋषि की जन्म शताब्दी के घोषित कार्यक्रमों में जन-जन को भागीदार बनाएँ, किन्तु इस शुभकामना को फलित करने के लिए हमें अनेक प्रश्नों के संतोष जनक समाधान

देने तथा अनेक संभावित चुनौतियों की कसौटियों पर स्वयं को खरा सिद्ध करने योग्य अपने आपको विकसित करना होगा। अपने उत्साह को ऐसी ही सशक्त प्रामाणिक तैयारी की दिशा में मोड़ना होगा।

## क्या तैयारी, कैसी तैयारी?

हम जब लोगों से आग्रह करेंगे कि वे शताब्दी योजना में शामिल हों, तो वे पूछेंगे कि किसकी शताब्दी है?

हम उत्तर देंगे- 'हमारे गुरुदेव की, एक सिद्ध पुरुष की'। तो वे कह सकते हैं- आपके गुरु की शताब्दी है, आप मनायें। हम उसमें क्यों भाग लें? अथवा वे सिद्ध पुरुष हैं, तो हमारा अमुक काम करवा दीजिये, चमत्कार दिखा दीजिए।

ध्यान रखें कि यह सच है कि पू.गुरुदेव ने अपने तप का अंश देकर तमाम लोगों के दु:ख बँटाये। उन्हें सुख पहुँचाया है, किन्तु यह उनका स्वभाव है, जीवन का उद्देश्य नहीं। भगवान् राम भी अयोध्या से लेकर जंगल तक में अपने सम्पर्क में आने वालों के दु:ख-सुख में काम आते रहे, किन्तु यह उनका स्वभाव था-

जीवनोद्देश्य नहीं। उनका जीवनोद्देश्य था रावण के आतंक का निवारण और आदर्श शासन व्यवस्था 'रामराज्य' की स्थापना। इसी प्रकार युगऋषि ने अपने संत स्वभाव से जो किया, वह भले ही चमत्कारी कहा जाय, किन्तु वह उनका जीवनोद्देश्य नहीं है। उनका जीवनोद्देश्य रहा है युग की विनाशकारी विभीषिकाओं को निरस्त करना तथा उज्ज्वल भविष्य के उपयुक्त व्यक्तित्वों का निर्माण करना।

इसीलिए वे अपने निकटस्थ परिजनों को यह समझाते रहे कि उनका परिचय चमत्कारी सिद्ध पुरुष के रूप में न दिया जाय। ऐसा करोगे तो स्वार्थी मुफ्तखोरों की भीड़ लग जायेगी। उन्हीं के लिखे शब्दों में देखें-

*"आप लोगों से यह मत कहना कि हमारे गुरुजी बड़े सिद्ध पुरुष हैं, बड़े महात्मा हैं और वरदान देते हैं, वरन् यह कहना कि युगऋषि ऐसे व्यक्ति का सम्बोधन है, जिसके पेट से क्रान्ति की आग निकलती है, आँखों से शोले निकलते हैं। आप ऐसे गुरुजी का परिचय देना, सिद्ध पुरुष का नहीं।"*

इसलिए जन्मशताब्दी के संदर्भ में परिजनों से बार-बार निवेदन किया जा रहा है कि उनका परिचय गायत्री वाले चमत्कारी बाबा के रूप में नहीं, युगद्रष्टा, युगस्रष्टा की क्षमताओं से सम्पन्न युगऋषि के रूप में देने की अपनी क्षमता विकसित करें।

यह काम आसान नहीं है। चमत्कारी बाबा की मुनादी तो कोई भी झूठा-सच्चा वाचाल व्यक्ति कर सकता है, किन्तु युगऋषि का परिचय देने वाले में तो 'युग साधक-युग सैनिक' की स्पष्ट झलक मिलनी चाहिए। शब्दों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए जीवन की गवाही देनी पड़ती है। इसलिए इसके लिए नैष्ठिक, उत्साही परिजनों को अपने व्यक्तित्व को परिष्कृत बनाने का क्रम बनाये रखना होगा। तभी हम उनका परिचय युगऋषि के रूप में दे सकेंगे।

## ऋषि-मनीषी झबके ठोते ठैं

जब हम उनका परिचय गुरुदेव या भगवान् का देते हैं, तो उनका व्यक्तित्व वर्तमान समय के कथित गुरुओं और भगवानों की भीड़ में खो जाने का खतरा है। लेकिन यदि ऋषि-मनीषी का परिचय देते हैं, तो उनके

प्रति सभी विचारशीलों, भावनाशीलों, आदर्श प्रेमियों का झुकाव स्वाभाविक ढंग से बढ़ने लगता है।

ठाकुर रामकृष्ण परमहंस ने, स्वामी विवेकानन्द ने, गाँधी जी ने, बिनोवा जी ने कितनों को शिष्य बनाया? वे कितनों के गुरु बने? किन्तु, चूँकि उनकी प्रतिष्ठा ऋषि-मनीषी की है, इसलिए सभी क्षेत्रों और सभी वर्गों के लोग उनके उदाहरण देकर, उनके सूत्र-सिद्धान्तों को अपना कर चलने में गौरव अनुभव करते हैं। इसी तरह जब हम उनका परिचय युग निर्माण योजना का मूर्त रूप देने वाले युगऋषि के रूप में देते हैं, तो युग में रहने वाला प्रत्येक सदेच्छा सम्पन्न व्यक्ति उनसे प्रेरणा लेकर अपने-अपने ढंग से युग निर्माण के अभियान में अपना-अपना योगदान देने में शान और संतोष का अनुभव करेगा। यदि हम वास्तव में उन्हें सन्तुष्ट करना चाहते हैं, उनकी कसौटी पर प्रामाणिक सिद्ध होना चाहते हैं, तो हमें इसके लिए स्वयं को तैयार करना होगा। साधना, स्वाध्याय एवं संयम का स्तर बढ़ाकर ही हम वह सेवा कार्य कर सकेंगे, जिससे उन्हें संतोष हो।

## उनके स्वरूप का दर्शन

घटना सन् ६० के दशक की है। अखण्ड ज्योति पत्रिका के कार्यालय में उत्तर प्रदेश के पोस्ट मास्टर जनरल (डाकतार विभाग के सबसे बड़े प्रांतीय अधिकारी) अचानक जा पहुँचे। पत्रिकाओं का डाक विभाग से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। आश्चर्य मिश्रित हर्ष के साथ उनका स्वागत किया गया। पूज्य गुरुदेव को सूचना दी गई, सो वे भी पहुँच गये।

पूछताछ से यह बात स्पष्ट हुई कि अखण्ड ज्योति की प्रतियाँ देख कर उनके मन में आश्चर्य उभरा कि इतने कम मूल्य में, इतने अच्छे मैटर और कलेवर वाली पत्रिका, विज्ञापन एक भी नहीं, लेखों पर लेखकों के नाम नहीं, सम्पादक मण्डल, संरक्षक मण्डल जैसी भी कोई सूची नहीं, आखिर यह सब चल कैसे रहा है? जानकारों ने जानकारी दी कि आचार्य जी वह सब अकेले ही करते हैं। उनके मन में ऐसे अनोखे व्यक्ति को देखने की इच्छा हुई, इसलिए अपने सरकारी दौरे के क्रम में अखण्ड ज्योति संस्थान भी शामिल कर लिया।

गुरुदेव से जब उन्होंने अपना मंतव्य बताया, तो गुरुदेव ने सहज भाव से गागर में सागर भरते हुए कहा-

*"आप जिसे देखना चाहते हैं, उसे मैं आपको दिखा नहीं सकता और जिसे आप देख रहे हैं, वह इतना सब कर नहीं सकता।"*

उनके कहने का भाव स्पष्ट है। देखने वाले उनके जिस हाड़-माँस के शरीर को देख पाते हैं, वह इस स्तर के कार्य कर नहीं सकता तथा शरीर के माध्यम से जो चेतन तत्त्व इतना सब कर रहा है, उसे देखना-अनुभव कर पाना हर एक के बस की बात भी नहीं है।

अधिकारी महोदय तो मिल-जुलकर संतुष्ट होकर चले गये। युगऋषि के बारे में उन्होंने क्या धारणा बनाई? उनका क्या लाभ उठाया? ये तो वे ही जानें। किन्तु युगऋषि के उक्त कथन से हम सबके लिए एक महत्त्वपूर्ण संदेश-निर्देश उभरता है। हम सब भी उनके दिव्य पुरुषार्थ से चमत्कृत हुए हैं। उनके साथ अपने को भावनात्मक स्तर पर जुड़ा अनुभव करते हैं। उनके लिए कुछ करना भी चाहते हैं, उनसे कुछ विशेष

पाना भी चाहते हैं। यदि अपने इन सब प्रयासों में हमें सफल होना है, तो हमें उनके प्रति अपनी अवधारणाओं को अपेक्षाकृत अधिक उत्कृष्ट और व्यापक स्तर की बनाना होगा।

वे जीवन भर यह तथ्य विभिन्न ढंगों से समझाने की कोशिश भी करते रहे हैं। जब कोई कहता था कि हम दर्शन करने आए हैं, तो वे कहा करते थे *"मित्रो! इस दर्शन से क्या बनेगा? मेरा जीवन दर्शन ही मेरा असली दर्शन है।"* गाँधीजी, ठाकुर रामकृष्ण परमहंस की काया के दर्शन तो लाखों ने किए, किन्तु वास्तविक लाभ वे ही उठा सके,जिन्होंने उनके नाम, शरीर और कार्यों के पीछे सक्रिय उनके जीवन दर्शन को देखा-समझा। इसीलिए वे कहते रहे कि दर्शन के लाभ तो सभी पाना चाहते हैं, किन्तु दर्शन का दर्शन (फिलॉसफी) को कम ही लोग समझ पाते हैं। असली लाभ उन्हीं दिव्य दर्शन पाने वालों को मिलता है। उसी को अनुभव करने की विधा को धारणा कहते हैं।

## ऋषि चेतना का व्यक्तित्व और दायित्व

जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि उनके जीवन का उद्देश्य युग निर्माण की ईश्वरीय योजना को मूर्त रूप देना रहा है। उनका व्यक्तित्व और कर्तृत्व उसी स्तर का रहा है। उनके ऋषि स्तर को ठीक से समझने के लिए उनकी जीवनी (हमारी वसीयत और विरासत) तथा 'युगऋषि और उनकी सूक्ष्मीकरण साधना' पुस्तकों का गंभीर अध्ययन करने की जरूरत है। पन्द्रह वर्ष की आयु में जब हिमालय स्थित सद्गुरुदेव से उनका सम्पर्क बना, तब यह तथ्य पहली बार खुलकर सामने आया कि उन्हें किस विश्वास के साथ परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण चक्र को गति देने के लिए भेजा और नियुक्त किया गया है।

पहली हिमालय यात्रा के विवरण में जब उनका प्रथम साक्षात्कार हिमालय के ऋषियों से कराया जाता है, तब वे अपने मनोभाव इस तरह व्यक्त करते हैं-

*'अभी तक मैं एक ही मार्गदर्शक का वाहन था, पर अब वे हिमालयवासी अन्य दिव्य आत्माएँ भी अपने*

*वाहन के रूप में काम ले सकती थीं और तदनुसार प्रेरणा, योजना एवं क्षमता प्रदान करती रह सकती थीं।'*

दूसरी हिमालय यात्रा के विवरण में तो इस युग में ऋषि तंत्र के ह्रास को लेकर ऋषियों की व्यथा-वेदना का पर्याप्त वर्णन है। वे सब समर्थ हैं, पर उन्हें प्रत्यक्ष कार्यों के लिए स्थूल देहधारी माध्यम चाहिए। उन्हीं का अभाव ऋषियों को व्यथित करता है। उनके अभाव की पूर्ति का संकल्प युगऋषि के मन में उभरता है, तो उनके गुरुदेव उनकी ओर से ऋषियों को इस प्रकार आश्वासन देते हैं-

*''यह निर्जीव नहीं है। जो कहता है, उसे करेगा भी। आप यह बताइये कि आपका जो कार्य छूटा हुआ है, उसका नये सिरे से बीजारोपण किस तरह हो? खाद-पानी आप- हम लोग लगाते रहेंगे, तो इसका उठाया हुआ कदम खाली नहीं जायगा।''*

ऋषियों द्वारा उनको माध्यम स्वीकार करने के साथ बात आगे बढ़ती है। उन्हें निर्देश मिलते हैं- *'' राजनैतिक क्रान्ति तो होगी। आर्थिक तथा उससे सम्बन्धित कार्य भी सरकार करेगी। किन्तु इसके बाद तीन क्रान्तियाँ और*

*शेष हैं, जिन्हें धर्मतंत्र के माध्यम से पूरा किया जाना है।....नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्तियाँ सम्पन्न की जानी हैं। इसके लिए उपयुक्त व्यक्तियों का संग्रह करना, और जो करना है उससे सम्बन्धित विचारों को व्यक्त करना अभी से आवश्यक है।''*

जो निर्देश मिले, उसके अनुसार युगऋषि के जीवन का क्रम और प्रयासों का क्रम चलता रहा। तीसरी हिमालय यात्रा में जब मथुरा छोड़कर हरिद्वार सप्तऋषि क्षेत्र में शान्तिकुञ्ज आश्रम बनाने का निर्देश दिया जाता है, तब तो इस युग में ऋषि-परम्परा के पुनः बीजारोपण की स्पष्ट योजना उन्हें सौंपी जाती है। विश्वामित्र परम्परा में गायत्री महामंत्र का युगानुरूप विस्तार-गायत्री तीर्थ की स्थापना, व्यास परम्परा में आर्ष साहित्य एवं युग साहित्य का कार्य, याज्ञवल्क्य परम्परा में यज्ञीय ज्ञान-विज्ञान को युगानुरूप स्वरूप देना। इसी प्रकार वशिष्ठ परम्परा, नारद परम्परा, सूत-शौनक परम्परा, जमदग्नि की साधना आरण्यक परम्परा, चरक, आर्यभट्ट, शंकराचार्य, पिप्पलाद-कणाद आदि ऋषि परम्पराओं को परोक्ष-प्रत्यक्ष प्रयासों

द्वारा पुनर्जीवित करने के निर्देशों का वर्णन है, जिन्हें उनके द्वारा बड़ी कुशलता से सक्रिय किया गया।

## युगान्तरकारी पुरुषार्थ

व्यक्तियों को दु:ख-कष्टों से उबारना, उन्हें सुख-समृद्धि उपलब्ध कराने के कार्य तो संत-स्वभाव के महामानव हमेशा से करते रहे हैं और वर्तमान समय में भी कर रहे हैं, किन्तु युगान्तरकारी पुरुषार्थ तो ऋषि स्तर की आत्माओं द्वारा ही संभव होते हैं। युगऋषि के जीवन के मुख्य उद्देश्यों में वे ही रहे हैं, जैसे-

❖हजारों वर्ष से प्रतिबंधित गायत्री साधना को बन्धन मुक्त करके उसे देश व्यापी विश्व-व्यापी, सर्वसुलभ स्वरूप देना।

❖यज्ञीय परम्परा, जो लगभग लुप्त और विकृत हो गई थी, उसे पुन: जाग्रत् तथा जन-जीवन में पुन: प्रतिष्ठित कर देना।

❖अध्यात्म के नाम पर जादूगरी जैसे भ्रमों को निरस्त करके उसे पदार्थ विज्ञान, विचार विज्ञान की ही

तरह चेतना विज्ञान के रूप में प्रखर विचारों तथा स्वयं के जीवन के प्रयोगों द्वारा पुनः प्रतिष्ठित करना।

❖देव संस्कृति की संस्कार परम्परा, जिसे काल प्रभाव ने दुरूह और दूषित बना दिया था, उसे पुनः सुगम तथा पवित्र-प्रखर रूप में प्रस्तुत कर देना।

❖जब विश्व के सभी वैज्ञानिक मनुष्यकृत प्रदूषण से महाविनाश की संभावना से चिंतित थे, तब उन विनाशकारी संभावनाओं को निरस्त किए जाने की सुनिश्चित घोषणा कर देना।

❖जब तीसरे विश्व युद्ध का खतरा अब हुआ-तब हुआ के रूप में मंडरा रहा था, तब महाशक्तियों को आध्यात्मिक चेतना से प्रभावित करके उसे सदा के लिए टाल देने का विश्वास दिलाना।

❖जब मनुष्य स्वार्थ एवं अहंकार में मदान्ध होकर पतन के गर्त में गिरने की तैयारी कर रहा हो, तब उसे सही रास्ते पर लाकर मनुष्य मात्र के लिए उज्ज्वल भविष्य की सुनिश्चित घोषणा करना।

विनाश की तमाम संभावनाओं को निरस्त करने के साथ मनुष्य में देवत्व के उदय तथा धरती पर स्वर्ग के अवतरण के लिए सार्वभौम-सर्वसुलभ सूत्र भी उन्होंने दिए हैं। उनके प्रति आस्था रखने वाले नर-नारियों को जन-जन के मन-मस्तिष्क में व्यक्ति, परिवार एवं समाज निर्माण से सम्बन्धित उनके सार्वभौम सूत्रों की उपयोगिता बिठाने के लिए नैष्ठिक प्रयास करने चाहिए। इन सबसे जन-जन को परिचित कराकर उस दिशा में प्रेरित कर देना ही युगऋषि की जन्मशताब्दी की सार्थक श्रद्धांजलि कही जा सकती है।

## धारणा से साधना-सफलता तक

इष्ट, गुरु, संत आदि के प्रति जिनकी जैसी धारणा होती है, उसी के अनुरूप उनके अंदर प्रेरणा उभरती है। प्रेरणा के अनुरूप साधना का क्रम बनता है तथा साधना के अनुरूप सफलताएँ, उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं। ठाकुर रामकृष्ण परमहंस की सेवा तो उनके भानजे हृदय नारायण ने बहुत की थी। स्वयं ठाकुर यह कहते थे कि इस शरीर की रक्षा के लिए हृदय ने बहुत कुछ किया। किन्तु हृदय

की धारणा उनके बारे में शरीर-केन्द्रित ही थी, इसीलिए उनका शरीर छूटने के बाद वे एक लाचार व्यक्ति की तरह कपड़े की फेरी लगाकर पेट पालते रहे।

इसके विपरीत जिन्होंने उनके नाम और शरीर रूपी प्रतीकों के पीछे उनके चेतन स्वरूप को समझा, उन्होंने उनका शरीर छूटने पर उनके उद्देश्यों के लिए काम करने के संकल्प के साथ उनकी चरण पादुकाओं की साक्षी में संन्यास दीक्षा ले ली। वे युवक उनके प्रति अपनी श्रेष्ठ अवधारणा के नाते ही ब्रह्मानंद, विवेकानंद, शिवानंद, सारदानंद, अद्भुतानंद जैसे बनकर अनोखा इतिहास रच गये।

इसीलिए यह तथ्य परिजनों को बार-बार याद दिलाया जा रहा है कि युगऋषि को चमत्कारी व्यक्ति भर मान लेना पर्याप्त नहीं है। ठाकुर को भी सभी लोग चमत्कारी और दिव्य-क्षमतासम्पन्न तो मानते ही थे, परन्तु इतने भर से बात कहाँ बनी? उनके इन गुणों के साथ उनके जीवन के आदर्शों, उद्देश्यों, अनुशासनों को जिन्होंने समझा, उनके अंदर उनके अनुगमन की प्रेरणा उभरी। उस प्रेरणा के आधार पर उनकी साधना निखरी। साधना

पुरुषार्थ के अनुरूप उन्हें दिव्य अनुदान मिले और वे जीवन की उच्चतर श्रेणियों-सफलताओं को पा सके।

युगऋषि को संतुष्ट करना हो या उनकी कसौटी पर खरे-प्रामाणिक सिद्ध होकर विशिष्ट अनुदान पाने हों; दोनों ही उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमें उनके प्रति अपनी और अपनों की, जन-जन की अवधारणाएँ उत्कृष्ट और व्यापक स्तर की बनानी होंगी।

## सार्थक, शाश्वत प्रतीक चुनें

इष्ट, गुरु, ऋषि, संत आदि के व्यक्तित्व तो बड़े व्यापक होते हैं, किन्तु उन्हें याद करने, पहचानने के लिए प्रतीकों का प्रयोग करना पड़ता है। उनके लिए निर्धारित नाम-संबोधन तथा उनके स्वरूप, ये दोनों ही वे प्रतीक होते हैं, जिनके माध्यम से हम उनके व्यक्तित्व के बारे में अपनी अवधारणाएँ बनाते हैं। यदि हमें अपनी अवधारणाएँ उत्कृष्ट बनानी हैं, तो उनके लिए १-सार्थक संबोधन तथा २- शाश्वत स्वरूपों का चयन करना चाहिए। यहाँ हम अन्य उदाहरणों की चर्चा करने की अपेक्षा सीधे युगऋषि-पू.गुरुदेव के संदर्भ में चिंतन करते हैं।

**सार्थक संबोधन**- संबोधन दो तरह के प्रचलित हैं। १-व्यक्ति वाचक संबोधन तथा २-भाववाचक या गुणवाचक संबोधन। युगऋषि के लिए व्यक्ति वाचक संबोधन है *'श्रीराम शर्मा'* तथा भाव या गुणवाचक संबोधन है, *'युगऋषि, वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ'* आदि।

व्यक्ति वाचक संबोधन तो पिता, माता या सगे संबंधियों की रुचि के अनुरूप रख दिया जाता है। यदि वे लोग कोई अन्य नाम 'क, ख, ग आदि' रख देते, तो व्यक्तिवाचक संबोधन बदल जाता; किन्तु उस संबोधन रूपी प्रतीक से जिस समर्थ चेतन सत्ता को व्यक्त किया जा रहा है, वह तो बदलती नहीं। व्यक्तिवाचक सम्बोधन 'क, ख, ग आदि' होने पर भी उनके लिए भाव या गुणवाचक सम्बोधन वही वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ, युगऋषि आदि ही रहते। अस्तु, उनके प्रति अपनी अवधारणा को श्रेष्ठतर बनाने के लिए उनके यह गुणवाचक नाम अधिक सार्थक सिद्ध होते हैं। इसलिए अपनी अवधारणा हमें कुछ इस प्रकार बनाने, साधने का प्रयास करना चाहिए-

हम **वेदमूर्ति** से जुड़े हैं, हमारे अंदर वेद, अर्थात् ज्ञान का स्तर बढ़ते रहना चाहिए। उन्होंने उज्ज्वल भविष्य के लिए जिस दिव्य ज्ञान की धारा को प्रवाहित किया है, हमें वेददूत-सत्परामर्शदाता बनकर अपने संपर्क के हर व्यक्ति तक उसकी आवश्यकता के अनुरूप ज्ञान का संदेश पहुँचाने में समर्थ होना चाहिए।

हम **तपोनिष्ठ** से जुड़े हैं। उन्होंने प्रचण्ड तप से युग की धारा को उज्ज्वल भविष्य की ओर मोड़ने का पुरुषार्थ दिखाया है। हम इतना तप तो साध ही लें कि अपने और अपनों के चरित्र को बेहतर बनाते रह सकें।

हम **युगऋषि** से जुड़े हैं। उन्होंने युग सृजन के लिए जो बीजरूप सूत्र तैयार कर दिये, उनको फलित होने के लिए अनुकूल मौसम की तरह सूक्ष्म प्रवाह पैदा कर दिया है। हम उन जीवन सूत्रों, बीजों को समय पर अपनी और अपनों की मनोभूमि में बो दें। अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, प्रतिभा एवं धन का कुछ अंश उनके विकास के लिए खाद-पानी की तरह लगाते रहें।

इस प्रकार की अवधारणाएँ जिनके अंत:करणों में प्रतिष्ठित होंगी, उनके अंदर युग साधक, युग सैनिक, प्रज्ञापुत्रों के अनुरूप प्रेरणाएँ उभरने लगेंगी। उनकी साधनाओं का स्वरूप कर्मकाण्ड की चिह्न-पूजा से ऊपर उठेगा तथा वे आत्म समीक्षा, आत्म शोधन, आत्म निर्माण एवं आत्म विकास की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए महामानवों, सौभाग्य-सम्पन्नों की उच्च श्रेणियों में शामिल हो सकेंगे।

**शाश्वत रूप**- प्रतीकों में संबोधन के साथ रूप का भी महत्त्व है। हमें उनके लिए सार्थक संबोधनों की तरह उनके शाश्वत रूप पर विशेष ध्यान देना चहिए। उनकी काया को, उनके चित्रों को ही उनका रूप मानें, तो उनमें तो जीवन भर परिवर्तन होता रहा। फिर देहावसान के बाद बाह्य रूप रहा ही नहीं। उनके माध्यम से उनके विराट् व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हमारी अवधारणा कैसे सधेगी ?

इस असमंजस के निवारण के लिए युगऋषि ने स्वयं पर्याप्त निर्देश दिए हैं। समय-समय पर यह कहते रहे हैं कि मैं व्यक्ति (रूप) नहीं हूँ, शक्तिरूप हूँ, एक मिशन हूँ। दृश्य प्रतीकों-स्वरूपों के बारे में उन्होंने स्पष्ट

कहा है कि मुझे अखण्ड ज्योति (दीपक) के रूप में देखना। मुझे प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा के रूप में देखना, मुझे लाल मशाल के रूप में देखना। इन प्रतीकों के माध्यम से उनके युगान्तरकारी दिव्य स्वरूप के बारे में हमारी अवधारणा उत्कृष्ट बन सकती है।

**१. अखण्ड ज्योति**- उन्होंने अपनी साधना स्थली पर जो अखण्ड ज्योति जलाई है, वह देव संस्कृति के सनातन-अखण्ड चेतन-प्रवाह की प्रतीक है, जिसके कारण भारत को देवभूमि, विश्वगुरु जैसे गौरव की प्राप्ति हुई। वे स्वयं को ऋषियों की सनातन चेतन धारा का ही रूप अनुभव करते रहे। इसलिए उन्होंने अपनी जीवनी को शीर्षक दिया '**हमारी वसीयत और विरासत**'। उनकी साधना जन्म-जन्मातरों से अखण्ड ज्योति की तरह अनवरत प्रकाशमान रही है।

**२. सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा**- मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने प्रियजनों, श्रद्धास्पदों की स्मृति बनाये रखने के लिए कुछ दृश्य प्रतीक स्थापित करना चाहता है। युगऋषि ने परिजनों की इस भावना का तो सम्मान

किया, किन्तु अपने प्रतीक 'व्यक्ति रूप' में नश्वर काया की मूर्ति के रूप में स्थापित करने को मना कर दिया। उनके स्थान पर सनातन, शाश्वत सिद्धांतों के रूप में प्रतीकों की स्थापना के निर्देश दिए।

वे ऋषिरूप हैं, तीर्थरूप हैं। प्रज्ञा की प्रखरता और श्रद्धा की सजलता का समन्वय व्यक्तियों को ऋषितुल्य और स्थलों को तीर्थतुल्य बनाता है। यह प्रतीक उनके गरिमामय व्यक्तित्व का बोध कराने में सक्षम है।

**३. लाल मशाल**– उन्होंने स्पष्ट निर्देश दिए हैं कि मैं अपने अभियान के अन्तर्गत किसी व्यक्ति विशेष को गुरु या दीक्षा देने वाले का दर्जा नहीं दे रहा हूँ। मेरे प्रतीक के रूप में लाल मशाल को स्थापित करके कोई भी नैष्ठिक साधक दीक्षा देने का कार्य सम्पन्न करा सकता है।

अपने सहयोगियों के लिए लिखे गये निर्देश पत्रक 'अपने अंग-अवयवों से' में उन्होंने स्पष्ट लिखा है- *"आप सबकी समन्वित शक्ति का नाम ही वह व्यक्ति है, जो इन पंक्तियों को लिख रहा है।"*

लाल मशाल के प्रतीक में कुल पाँच घटक हैं। १. जन समुदाय–युग सृजन के लिए अनुकूल **श्रेष्ठ** भावना और **श्रेष्ठ** विचारणा वाले सभी वर्गों के कर्मठ **नर–नारी**। २. उनकी समन्वित शक्ति का प्रतीक–**हाथ**। ३.सृजन के संकल्प के रूप में हाथ में थामी हुई **मशाल**। ४. सृजन की क्षमता, उमंग, सामर्थ्य के रूप में **उठती ज्वाला** तथा ५. परमात्मा के समर्थन–संरक्षण का प्रतीक **प्रभामण्डल**।

युगऋषि के व्यक्तित्व के भी यही सब अंग रहे हैं। सबकी समन्वित शक्ति के रूप में ही वे स्वयं का परिचय देते रहे हैं। युगनिर्माण की ईश्वरीय योजना को मूर्त रूप देने के संकल्प और तप–सामर्थ्य उनके व्यक्तित्व की पहचान रहे हैं। ईश्वरीय दिव्य अनुग्रह तो जैसे उनके जीवन का अभिन्न अंग था। इसलिए उनके दृश्य प्रतीक के रूप में लाल मशाल को सार्थक और शाश्वत प्रतीक कहना सर्वथा उचित है।

जब हमारी अवधारणाएँ उनके स्वरूप के बारे में उक्त प्रकार की बनेंगी, तो हमारे अन्दर भी अखण्ड ज्योति की तरह छोटी–सी ही सही, किन्तु अखण्ड

साधना का प्रवाह उभरेगा। हम भी उन्हें अपने अंदर सजल श्रद्धा एवं प्रखर प्रज्ञा के रूप में विकसित-स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील होंगे। लाल मशाल के जनसमूह के एक पात्र, उनके एक अंग-अवयव के रूप में विकसित होने की हमारी अदम्य भावना उभरेगी। फिर हमारे लिए वे सभी कार्य सहज-स्वाभाविक लगने लगेंगे, जिन्हें अभी हम कठिन या असंभव कहकर टाल देते हैं और जिन्हें पूरा करने की उम्मीद वे हमसे करते हैं।

उनसे भावनात्मक स्तर पर जुड़े प्रत्येक प्राणवान् परिजन के जीवन की सार्थकता इसी में है कि वह उनकी उम्मीदों पर खरा-प्रामाणिक सिद्ध हो। उनके युगऋषि के स्वरूप को तथा उनकी योजना का स्वरूप समझने-समझाने, उसे अनुभव करने-कराने की हमारी क्षमता विकसित और फलित होती रहे। उनकी योजना है-मनुष्य मात्र को उज्ज्वल भविष्य तक पहुँचाने वाली सार्वभौम योजना **युग निर्माण योजना**। युगऋषि की यही चाह रही है कि जन-जन इस अभियान से जुड़े यह जन अभियान बने। हमें यही करके दिखाना है।

## इसे जन आन्दोलन बनाएं

### व्यसनी नहीं, समझदार बनें

महाभारत में यक्ष के प्रश्न और धर्मराज युधिष्ठिर द्वारा दिये गये उत्तरों के संदर्भ में लगभग सभी विज्ञजन जानते हैं। जब कोई कठिन प्रश्न सामने आता है, जिसका उत्तर खोजना अनिवार्य समझा जाता है, तो उसे 'यक्ष प्रश्न' कहकर उसका महत्त्व समझाने का प्रयास किया जाता है। उसी प्रश्नोत्तरी में एक प्रश्न है.. "पंडित, विद्वान्, समझदार किसे कहते हैं ?" युधिष्ठिर का उत्तर है....

**पठकाः पाठकाश्चैव, येचान्ये शास्त्र चिन्तकाः।**
**सर्वे व्यसनिनो मूर्खाः, यः क्रियावान् स पण्डितः॥**

अर्थात्–पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले, और भी जो शास्त्र वचनों का चिंतन करने वाले हैं, वे सब व्यसनी मूर्ख हैं। पण्डित–समझदार केवल वे हैं, जो उन सूत्र-सिद्धांतों के अनुसार आचरण करते हैं, उस दिशा में क्रियाशील हैं।

युग निर्माण के संदर्भ में भी हमें इसी सूत्र को ध्यान में रखकर अपना और अपने प्रयासों का मूल्यांकन करना होगा। युग निर्माण के सूत्रों को पढ़ना-पढ़ाना, समझना-समझाना, उसके नारे लगाना भी जरूरी है, किन्तु केवल इतना करना पर्याप्त नहीं है। उन सूत्रों के अनुसार अपने और अपनों के जीवन को ढालना, वर्तमान स्तर की समीक्षा करते हुए, अगले लक्ष्य निर्धारित करते हुए आगे बढ़ते रहना भी जरूरी है। इस विवेकपूर्ण क्रियाशीलता के बिना श्रेष्ठ सूत्रों को याद करना, उनकी चर्चा करना भी एक प्रकार का व्यसन ही बन जाता है। हमें व्यसनी की सीमा से ऊपर उठकर समझदार बनना ही है।

इसलिए युग परिवर्तन के इस अत्यंत महत्त्वपूर्ण समय में प्रत्येक समझदार का यह संकल्प होना चाहिए कि *हम युग निर्माण के सूत्रों को गहराई से समझेंगे और उन्हें जीवन का अंग बनाने के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं साधनों का एक अंश नियमित रूप से लगाते भी रहेंगे।* युगऋषि की जन्म शताब्दी पर यही हमारी सार्थक श्रद्धाञ्जलि होगी।

युग निर्माण योजना ईश्वरीय योजना है, सबके लिए है। ईश्वरीय सनातन व्यवस्था के अंतर्गत इसके साथ जन-मन का संकल्प भरा पुरुषार्थ जुड़ना जरूरी है। इसीलिए युगऋषि ने नारा दिया है 'युग निर्माण होगा कब ? जन-जन जब चाहेगा तब।' जन-जन तक उन सूत्रों को पहुँचाना, उनके मनों में ईश्वर के साथ साझेदारी का उत्साह जगाना, जिनमें उत्साह उभरे उन्हें किसी छोटे-बड़े कार्यक्रम के साथ सक्रियता पूर्वक जोड़ देना जरूरी है।

## समझें-समझाएँ, बढ़ें-बढ़ाएँ

### लक्ष्य-

**'मनुष्य में देवत्व का उदय, धरती पर स्वर्ग का अवतरण।'**

धरती पर स्वर्ग जैसी परिस्थितियों की कामना तो सभी करते हैं, किन्तु यह भूल जाते हैं कि स्वर्गीय परिस्थितियाँ पाना और उन्हें लम्बे समय तक बनाये रखना केवल उन्हीं के लिए संभव होता है, जिनके अंदर देवत्व जाग्रत् हो। सफाई का जिनका स्वभाव नहीं है, उन्हें स्वच्छ स्थान उपलब्ध करा भी दिया जाय, तो

भी उनका निर्वाह कैसे होगा? जिनके अंदर संगीत जाग्रत् नहीं है, उन्हें संगीत के वातावरण में भेज दिया जाय, तो वे उसका रस तो ले ही नहीं सकते, उसे और बिगाड़ देंगे।

**देवत्व**-संगीत और सफाई की तरह देवत्व भी हर मनुष्य के अंदर सोयी स्थिति में है। उसे जाग्रत् करना पड़ता है। उसे छीना, खरीदा या माँगा नहीं जा सकता। ऋषितंत्र ने व्यवस्था बना दी है- *जो उनके अनुशासन के अनुरूप चलेंगे, उनके अंदर देवत्व विकसित हो ही जायेगा।* देवत्व का उदय ही होता है।

**स्वर्ग**-बीज विकसित होने को तैयार होता है, तो मौसम की उर्वरता अदृश्य जगत् से उतर आती है और दृश्य फसल का रूप ले लेती है। जहाँ मनुष्य में देवत्व का बीज विकसित होने लगता है, वहीं स्वर्ग की फसल उतर आती है। स्वर्ग का ही अवतरण होता है।

## त्रिवेणी संगम

युगनिर्माण अभियान को युगऋषि ने त्रिवेणी संगम कहा है। इसे तीन धाराएँ मिलकर स्वरूप देती हैं।

**१. ईश्वर**- यह योजना ईश्वर की है, इसलिए उसके लिए शक्ति-अनुदान भी सब को उसी से प्राप्त होते हैं। फसल के संदर्भ में यह अनुकूल मौसम की तरह है। अस्तु, पहली धारा है-**योजना तथा शक्ति ईश्वर की।**

**२. ऋषि**- ईश्वरीय योजना को मूर्त रूप देने की पहल ऋषितंत्र द्वारा होती रहती है। वे ईश्वरीय योजना और उसके अनुशासनों का स्वरूप स्पष्ट कर देते हैं। उसे आस्था का आधार देते हैं। जो उन अनुशासनों को मानते हैं, उन्हें ऋषियों का समर्थ संरक्षण-मार्गदर्शन मिलता रहता है। फसल के संदर्भ में इसे उपजाऊ भूमि की उपमा दी जा सकती है। मौसम की उर्वरता का लाभ बीज को भूमि के माध्यम से ही मिलता है। दूसरी धारा है- **अनुशासन एवं संरक्षण ऋषियों का।**

**३. मनुष्य**- यह योजना वस्तुतः मनुष्यों के हित के लिए है। मौसम और भूमि बीज को विकसित-फलित करने के लिए ही है , किन्तु इसमें बीज को भी तो कुछ पुरुषार्थ-सहकार करना पड़ता है। उसे मौसम से जुड़कर अपने अंदर की संचित ऊर्जा को अंकुरित करने का

पुरुषार्थ स्वयं भी तो करना पड़ता है। इसलिए यह तीसरी धारा है- **पुरुषार्थ और सहकार सत्पुरुषों का।**

पहली और दूसरी धाराएँ तो अपने आप में समर्थ-परिपूर्ण रहती हैं। तीसरी-मनुष्य की धारा की सुनिश्चितता पर ही फसल निर्भर करती है। उपलब्धि का सूत्र है- १×२×३। एक और दो तो पूर्ण हैं, किन्तु यदि तीसरी धारा का मान शून्य है, तो उपलब्धि- शून्य ही रह जायेगी। वह १/२ है, तो उपलब्धि आधी रहेगी और वह १ है, तो उपलब्धि पूरी रहेगी।

उपरोक्त कथन का अर्थ है कि जो संकल्प लें, उसे पूरा करें। बस इसी क्रम से थोड़े से शुरू करें, एक-एक करके संकल्प पूरा करते रहें, तो देवत्व का विकास और स्वर्ग का आधार समर्थ होता रहे।

## त्रिविध निर्माण

जहाँ स्वर्गीय परिस्थितियों के निर्माण की बात आती है, वहाँ लोग एक अच्छे समाज के निर्माण के लिए विचार और प्रयास करने लगे हैं। युगऋषि कहते हैं कि समाज निर्माण करना है, तो पहले उसकी आधारभूत

इकाइयों–**व्यक्ति** तथा **परिवार** के निर्माण को प्राथमिकता देनी होगी। इसलिए युग निर्माण के लिए तीनों निर्माण **व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण** तथा **समाज निर्माण** के समानान्तर प्रयास करने होंगे।

**व्यक्ति निर्माण**– व्यक्ति निर्माण का अर्थ है व्यक्तित्व का निर्माण। मनुष्य के व्यक्तित्व में, स्वभाव में, मनुष्यता का, देवत्व का उदय हो। उसके सूत्र हैं– १. ईश्वर उपासना, २. आत्म साधना, ३. लोक आराधना, ४. समयदान, ५. अंशदान।

**उपासना– ईश्वर की :** युगऋषि का सूत्र है "मनुष्य महान् है, किन्तु उससे भी महान् है उसका सृजेता। मनुष्य में वाँछित महानता एवं देवत्व का संचार सृजेता, परमात्मा के सम्पर्क से ही संभव है। अपनी कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना, पूजा–उपचार करने से उपासना का उद्देश्य नहीं सधता। उसके लिए तो मन को खाली करके बैठना तथा ईश्वरीय प्रेरणा–प्रकाश को अंदर उतारने का भाव करना होता है। इष्टमंत्र या इष्टनाम का जप इसमें सहायक सिद्ध होता है।"

**साधना- अपनी :** अपने जीवन को ईश्वरीय प्रेरणा के अनुरूप साधना, गढ़ना, विकसित करना। स्वाध्याय एवं संयम इसके लिए सबल माध्यम बनते हैं।

**स्वाध्याय-** सत्साहित्य का अध्ययन करके, सत्पुरुषों के अनुभव सुनकर-सत्संग से जो सूत्र मिलें, उन्हें मनन-चिंतन द्वारा जीवन का अंग बनाने का प्रयास स्वाध्याय है। युग साहित्य इसमें समर्थ सहयोगी की भूमिका निभाता है।

**संयम-** महर्षि पतंजलि का सूत्र है-*'त्रयमेकम् संयमः'* तीन मिलकर संयम बनते हैं। हर मनुष्य के अंदर दिव्य क्षमताएँ हैं, उन्हें १. विकसित करना, २. नियंत्रित रखना, बिखरने न देना तथा ३. सदुद्देश्यों में संकल्पपूर्वक लगा देना। इन तीनों प्रयासों के संयोग से संयम साधना सधती है।

हर मनुष्य में चार विशिष्ट क्षमताएँ हैं, उनको संयमित करना जरूरी है। वे हैं-**इन्द्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम।** इन्हें मिलाकर जीवन व्यवस्थापन (लाइफ मैनेजमेण्ट) भी कह सकते हैं।

**प्रगतिक्रम**- व्यक्तित्व में प्रगति का क्रम बराबर बना रहे, इसके चार सूत्र हैं- आत्म समीक्षा, आत्म शोधन, आत्म निर्माण एवं आत्म विकास।

**( अ ) आत्म समीक्षा**- हम वर्तमान में किस स्तर पर हैं तथा अगला चरण क्या हो, इस अन्तर्दृष्टि को आत्म समीक्षा की क्षमता कहते हैं। दुनिया भर की समीक्षा में रस लेने वाले चतुर लोग भी आत्म समीक्षा में कमजोर एवं बचकाने ही सिद्ध होते देखे जाते हैं। इसे स्व-मूल्यांकन (सेल्फ एसेसमेण्ट) भी कह सकते हैं।

**( ब ) आत्म शोधन**- समीक्षा से अपने अंदर जो दोष-दुर्गुण दिखें, उन्हें संकल्पपूर्वक एक-एक करके दूर करना आत्म शोधन है।

**( स ) आत्म निर्माण**- समीक्षा के आधार पर अपने अंदर जिन श्रेष्ठ गुणों का अभाव दिखता है, उन्हें अपने अंदर पैदा करना, स्थापित करना आत्म निर्माण है।

**( द ) आत्म विकास**- अपने अंदर जो श्रेष्ठ गुण-भाव (प्रेम, आत्मीयता आदि) हैं, उन्हें छोटी सीमा से निकाल कर व्यापक बनाना आत्म विकास है।

ये साधना के सूत्र व्यक्ति को जीवन के हर क्षेत्र में उत्कृष्टता, सफलता, सुयश तथा सद्गति प्रदान कर सकते हैं।

**लोक आराधना- आराधना-श्रद्धा, संवेदना युक्त सेवा समाज की।** साधक यह मानकर चलें कि ईश्वर ने हमें जो श्रेष्ठ विभूतियाँ प्रदान की हैं, वे उसी की अमानत हैं। हम उसकी दी अमानत को उसके लिए ही खर्च करने की समझ रखते हैं या नहीं, यह परीक्षा लेने के लिए वही प्रभु समाज में अभावग्रस्त, पीड़ित, पतित के रूप में आता है। उसकी दी विभूतियों को हम उसे सौंपने में रुचि ले पाते हैं, तो यह सेवा-आराधना है। उसकी परीक्षा में खरे उतरने पर वह आत्म संतोष, लोक सम्मान तथा दैवी अनुग्रह जैसे वेश कीमती इनाम देता है।

**समयदान-अंशदान :-** उक्त सभी साधनाएँ नियमित-व्यवस्थित चलें, इसके लिए हर साधक को ईश्वर द्वारा दिये गये समय तथा अपने पुरुषार्थ से प्राप्त धन का एक अंश नियमित रूप से इस निमित्त निकालना ही चाहिए।

जो भी व्यक्ति, साधक उक्त पाँचों सूत्रों को जीवन में नियमितता से धारण करेंगे, उनके अंदर देवत्व के स्तर की सतत वृद्धि होते रहना सुनिश्चित है।

## परिवार निर्माण

युगऋषि ने परिवार को व्यक्ति निर्माण की प्रयोगशाला, व्यायाम शाला, टकसाल कहा है। यह समाज की छोटी आधारभूत सामूहिक इकाई भी है। परिवार में ही व्यक्ति 'मैं' की संकीर्णता से ऊपर उठकर 'हम' की व्यापकता में प्रवेश करता है। ऋषि का सूत्र है- *प्यार और सहकार से भरा-पूरा परिवार ही धरती का स्वर्ग होता है।*

परिवार घर-परिवार भी होता है, लेकिन वह वहीं तक सीमित नहीं। वह संस्था-परिवार, संगठन - परिवार, राष्ट्र-परिवार से विश्व परिवार तक विकसित हो सकता है। परिवार के सदस्यों में पारिवारिक पंचशील- श्रमशीलता, शालीनता, मितव्ययिता, सुव्यवस्था तथा सहकारिता के संस्कार जाग्रत् करने से आदर्श परिवारभाव का विकास होता है।

युगऋषि ने यह तथ्य बार-बार दुहराया है कि जब भी आदर्श सामाजिक व्यवस्था बनेगी, तो वह पारिवारिक संवेदना-सहकार के आधार पर ही बनेगी। इसीलिए घर-परिवार और संगठन-परिवार दोनों स्तरों पर पारिवारिक व्यवस्था बनेगी, तो समाज में भी वही रीति-नीति लागू की जा सकेगी।

## समाज निर्माण

श्रेष्ठ व्यक्ति तथा सुसंस्कारित परिवारों के संयोग से आदर्श समाज निर्माण का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिए दो तरह के अभियान चलाना जरूरी है। **अ.** दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन तथा **ब.** सत्प्रवृत्ति संवर्धन। इनके लिए तीन तरह की गतिविधियाँ चलाना जरूरी है।

**त्रिविध गतिविधियाँ-** उक्त उद्देश्यों के लिए तीन प्रकार की गतिविधियाँ जरूरी हैं- **क.** प्रचारात्मक **ख.** रचनात्मक, **ग.** संघर्षात्मक।

**प्रचारात्मक**-से बड़ी संख्या में लोगों में जागरूकता फैलेगी। नर-नारी प्रभावित होकर नवसृजन के लिए आगे आयेंगे।

यों कहने के लिए तो अपना परिवार प्रचारात्मक कार्यक्रमों में काफी कुशल हो गया है, किन्तु जहाँ तक युग निर्माण के सूत्रों के समझने-समझाने की बात है, उसमें हम अभी काफी पीछे हैं।

यह बात ठीक है कि भारत धर्मप्राण देश है। इसलिये धार्मिक कार्यक्रमों के माध्यम से जन-जन तक पहुँचना आसान होता है। फिर भी माध्यम तो माध्यम ही है। वह लक्ष्य या उद्देश्य तो नहीं बन सकता। लक्ष्य हमारा है युग निर्माण। इसलिए जन साधारण में जैसा उत्साह धार्मिक कर्मकाण्ड करके पुण्य लूट लेने के लिए है, वैसा ही उत्साह स्वयं को ईश्वरीय योजना में भागीदार बनने-बनाने के लिए भी जगाना होगा। तभी हमारा प्रचारात्मक अभियान युगऋषि की कसौटी पर खरा सिद्ध होगा।

**रचनात्मक**-से नवसृजन की दिशा में समय, शक्ति, साधनों का नियोजन होगा। व्यक्तियों और व्यक्ति-समूहों में सृजन का कौशल उभरेगा। जैसे-जैसे सृजनशील व्यक्तियों की संख्या और कुशलता बढ़ेगी, वैसे-वैसे सृजन अभियान गति पकड़ेगा।

हमारा सबसे प्रधान रचनात्मक कार्य है *'जन मानस का निर्माण, नवयुग के अनुरूप व्यक्ति निर्माण।'* यह कार्य महत्त्वपूर्ण तो है, किन्तु इसे सभी कर नहीं सकते। प्रचारात्मक कार्यक्रमों से उभरकर आये जो युग साधक व्यक्ति निर्माण के कार्य में लग सकें, उन्हें उसी को प्राथमिकता देनी चाहिए, अन्य सृजनशील साधकों को विभिन्न प्रत्यक्ष दिखने वाले रचनात्मक कार्यक्रमों, सृजनात्मक आन्दोलनों के साथ जोड़ देना चाहिए।

सृजन साधना एक प्रकार का तप है। जिसने लगन और धैर्य के साथ उसका नियमित अभ्यास नहीं किया है, वह चाहते हुए भी सृजन कार्यों में प्रभावपूर्ण भागीदारी नहीं निभा पाता। इसलिए 'सृजन साधना' में नियमितता जरूरी है। समयदान, अंशदान इसी के लिए नियमित रूप से निकाले जाते हैं। संगठित प्रयास इसीलिए किये जाते हैं। सृजन साधना महापुरश्चरण द्वारा भावनाशील नर-नारियों को सृजनशील तप-साधना से जोड़ने का प्रयास किया जाना है। अपने परिवार की सृजनात्मक क्षमता को कई गुना बढ़ाये जाने की जरूरत

है। इसके लिए सामर्थ्य के साथ प्रामाणिकता और नियमितता जरूरी है।

**संघर्षात्मक**–से सृजन के मार्ग में आने वाले अवरोधों को काटकर आगे बढ़ने का क्रम चलेगा।

सृजन के रास्ते में रुकावटें जरूर आती हैं। बाहर से आसुरी तत्त्व और अंदर से आसुरी प्रवृत्तियों द्वारा तरह-तरह के विघ्न पैदा किए जाते हैं, प्रतिरोध खड़े किये जाते हैं। उन्हें निरस्त करके आगे बढ़ना पड़ता है। इसके लिए अदम्य साहस, अविचल धैर्य और अटूट आत्म विश्वास की जरूरत पड़ती है। सृजन कार्य तो अपनी स्थिति के अनुसार नियमित व्यवस्था बनाने से ही सध जाते हैं। संघर्ष के लिए तो पुकार पर तत्काल उछल कर आगे आना पड़ता है। जो लोग सृजनात्मक कार्यों में ही समय और सामर्थ्य की कमी का रोना रोने लगते हैं, वे संघर्षात्मक कार्यों की अग्निपरीक्षा में कैसे टिक सकते हैं ? इसलिए प्रचारात्मक एवं सृजनात्मक तप से निखर कर उभरे हुए व्यक्तित्व ही संघर्षात्मक कार्यों की चुनौतियों का सामना करके विजयी होकर आगे बढने में सफल हो सकते हैं।

युगऋषि कहते रहे हैं कि हमारा प्रचार भी सृजन हेतु है तथा संघर्ष भी सृजन का सहयोगी है। जैसे- चिकित्सक का संघर्ष किसी व्यक्ति या उसके अंग विशेष से नहीं, उसमें घुसे हुए रोगों से होता है। चीर-फाड़ भले ही किसी व्यक्ति विशेष या उसके अंग विशेष की होती दिखे, किन्तु चिकित्सक का एकमात्र लक्ष्य उसमें समाये रोग को निर्मूल करना होता है। हमारा संघर्ष भी किसी भावनाशील और कुशल चिकित्सक के उपचार जैसा ही है। वैसी ही मनोवृत्ति और वैसी ही कुशलता हमें अर्जित करनी होगी।

इस प्रकार संस्कारवान् व्यक्ति उभरकर ईश्वरीय चेतना तथा ऋषिसत्ता के सहयोग से व्यक्ति, परिवार एवं समाज निर्माण के चरण बढ़ाते हुए युग निर्माण के महान् लक्ष्य की ओर बढ़ते रह सकेंगे।

## त्रिविध क्रान्तियाँ

युगऋषि का कथन है कि इस बार सामान्य क्रांति नहीं, व्यापक महाक्रांति की जानी है। अब तक भारत और विश्व में जो क्रांतियाँ हुई हैं, वे किसी एक क्षेत्र या

एक देश के लिए तथा सीमित उद्देश्य के लिए हुई हैं। अब चूँकि विज्ञान और तकनीकी विकास ने विश्व के सुदूर भूभागों को भी पड़ौसी-परिवार जैसा निकट ला दिया है, इसलिए अब क्रांति भी क्षेत्रीय-एकदेशीय न होकर भूमण्डलीय (ग्लोबल) ही होगी। इसी प्रकार अब तक की क्रांतियों के लक्ष्य भी सीमित रहे हैं, जैसे किसी क्षेत्र विशेष की राजनैतिक स्वतंत्रता, शिक्षा क्रांति, हरित क्रांति आदि। अब समाज में व्याप्त सभी दोषों को हटाने तथा स्वर्गीय परिस्थितियों को साकार करने का लक्ष्य है, इसलिए क्रांति एकांगी नहीं, सर्वांगीण ही होगी। अस्तु, इस बार की सामाजिक क्रांति महाक्रांति ही होगी।

युगऋषि ने जिस प्रकार समाज निर्माण को व्यक्ति निर्माण एवं परिवार निर्माण के ठोस आधारों पर खड़ा करने की बात कही है, उसी प्रकार सामाजिक क्रांति को भी बौद्धिक क्रांति (विचार क्रांति) एवं नैतिक क्रांति के आधारों पर ही आगे बढ़ाने की अनिवार्यता समझाई है।

**बौद्धिक क्रांति :-** मनुष्य का शरीर विचारों से संचालित दिव्य यंत्र है। विचार के अनुरूप ही संकल्पों,

चेष्टाओं और कार्यों का स्वरूप बनता-बिगड़ता रहता है। गहराई से अध्ययन करने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य का विचार करने का तरीका बहुत गड़बड़ा गया है। जितने भी प्रदूषण बढ़े हैं, वे मनुष्य के प्रदूषित विचारों की ही उपज हैं। इसलिए सामाजिक क्रांति को सफल बनाने के लिए विचार क्रांति करनी होगी। लोगों ने अध्यात्म विज्ञान, धर्म विज्ञान, समाज विज्ञान के प्रतिकूल संकीर्णता, स्वार्थपरता, हृदयहीनता, को पोषण देने वाली परिभाषाएँ, नीतियाँ गढ़ ली हैं। चिकित्सा विज्ञान एवं स्वास्थ्य की मर्यादाओं को दरकिनार करके तमाम नशे, व्यसन, फैशन अपना लिए हैं। उन सबको निरस्त करने वाले प्रखर विचारों को विस्तार देकर मनुष्य को जीवन की श्रेष्ठ परिभाषाओं के प्रति आस्थावान् बनाना होगा। इसके लिए साहित्य, सत्संग, संगीत, कला, मीडिया सभी का सहारा लेना होगा।

**नैतिक क्रांति :-** देखा गया है कि यदि परिभाषाएँ सही गढ़ भी ली जायें और लोगों को तर्क द्वारा उनके

लिए सहमत भी कर लिया जाय, तो भी बात बनती नहीं। सरकारी तथा गैर सरकारी समाज सेवी संगठनों द्वारा अनेक अच्छी योजनाएँ विशेषज्ञों द्वारा बनवा ली जाती हैं। उनके लिए पर्याप्त संसाधन भी खड़े कर लिये जाते हैं। संबंधित व्यक्तियों को उद्देश्य और नियम समझा भी दिये जाते हैं। उनसे शपथ भी उठवा ली जाती है, किन्तु उनके अंदर उच्च आदर्शों, सिद्धान्तों को अपनाकर चलने योग्य नैतिक बल नहीं होता, इसलिए वे कुछ कदम चलकर ही फिसल कर गिर जाते हैं या थक कर बैठ जाते हैं।

इसलिए जहाँ जीवन में आदर्शनिष्ठ परिभाषाओं को समझने-समझाने, स्थान देने के लिए विचार क्रांति की जरूरत है, वहीं उन श्रेष्ठ परिभाषाओं, नियमों, सिद्धांतों को लेकर अविचलित क्रम से बढ़ते रहने योग्य नैतिक बल जगाने के लिए नैतिक क्रांति भी जरूरी है। मनुष्यों के चिंतन, चरित्र और व्यवहार में मनुष्योचित नैतिकता का समावेश करने की आवश्यकता है।

**सामाजिक क्रांति :-** समाज के विभिन्न वर्गों, विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुरूप दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन, सत्प्रवृत्ति संवर्धन के लिए तमाम क्रांतिकारी आंदोलन चलाने होंगे। उनके लिए समाज के पास व्यक्ति एवं शक्ति-संसाधनों की कमी नहीं है, किन्तु विचार क्रांति के अभाव में वे लक्ष्य निर्धारित नहीं कर पाते तथा नैतिक क्रांति के अभाव में वे लक्ष्य की ओर अडिग भाव, अथक पुरुषार्थ के साथ बढ़ नहीं पाते। इसलिए जैसे-जैसे विचार क्रांति और नैतिक क्रांतियों का स्तर बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे अनेक प्रकार की सामाजिक क्रांतियों का मार्ग प्रशस्त होता जायेगा और हर क्षेत्र एवं हर वर्ग की आवश्यकता के अनुरूप सामाजिक क्रांतिकारी आन्दोलनों की झड़ी लग जायेगी। चिर प्रतीक्षित ईश्वरीय योजना के अनुरूप महाक्रांति गतिशील हो उठेगी।

## त्रिविध उपलब्धियाँ

सभी चाहते हैं कि हमारा समाज आदर्श, सभ्य, स्वर्गीय परिस्थितियों से युक्त बने। युगऋषि ने इसके लिए सूत्र दिया है कि सभ्य समाज बनाने के लिए

अधिकांश व्यक्तियों का शरीर स्वस्थ तथा मन स्वच्छ बनाना होगा। **स्वस्थ शरीर** एवं **स्वच्छ मन** के संयोग से ही **सभ्य समाज** की स्थापना संभव होगी। ये सभी आपस में जुड़े हैं।

**स्वस्थ शरीर :-** समाज में प्रचलित कहावत है *'पहला सुख निरोगी काया'*। इसी प्रकार संस्कृत की कहावत है *'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'* अर्थात् धर्म, श्रेष्ठ कर्म, परमार्थ आदि करने के लिए शरीर प्रारंभिक साधन है। यदि शरीर स्वस्थ नहीं है, तो मन में अच्छे भाव, अच्छे विचार होते हुए भी मनुष्य अच्छे कार्यों को अंजाम नहीं दे सकता। इसलिए सामाजिक क्रांति के लिए, समाज निर्माण के लिए स्वास्थ्य साधना जरूरी है।

**स्वच्छ मन :-**शरीर स्वस्थ हो और मन स्वच्छ न हो, तो क्या होगा? मनुष्य में कार्यक्षमता तो होगी, लेकिन वह उसका प्रयोग अच्छे उद्देश्य के लिए नहीं कर सकेगा। जैसे गंदगी के कीड़े दूध, स्वच्छ जल, स्वस्थ फलों में रस नहीं ले पाते, उसी प्रकार अस्वच्छ

मन को अच्छे कार्यों में रस नहीं आता। जिस कार्य में मन रस नहीं लेता, उस कार्य को कोई व्यक्ति बेगार के रूप में थोड़े समय के लिए भले सहन कर ले, स्वेच्छा से लम्बे समय तक उसे अपना नहीं सकता।

युगऋषि ने 'अस्वच्छ मन के उपद्रव' जैसे शीर्षकों से अनेक लेख लिखे हैं। आज ज्ञान, विज्ञान, बुद्धिवाद से विकसित असाधारण शक्ति, सामर्थ्य का उपयोग जनहित में न होकर जनउत्पीड़न, जनशोषण में हो रहा है, तो उसके पीछे केवल अस्वच्छ-अनगढ़ मनों का ही करिश्मा है। इसीलिए मन को लेकर अनेक कहावतें प्रचलित हैं, जैसे- *'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।', 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।''* अर्थात् मनुष्य के बंधन एवं मोक्ष का कारण मन ही है। इसलिए साधना-स्वाध्याय के द्वारा मन को स्वच्छ बनाने का जन-आन्दोलन चलाना जरूरी है। इसके आधार पर ही विनाशकारी विडम्बनाओं से मुक्ति मिल सकेगी और मंगलकारी संभावनाओं को साकार किया जा सकेगा।

**सभ्य समाज :-** सभ्य, श्रेष्ठ, देवोपम समाज कैसा हो, इसके बारे में सभी समझदार एकमत हैं। यदि स्वस्थ शरीर एवं स्वच्छ मन वाले नर-नारियों को पर्याप्त संख्या में गढ़ा और एकजुट किया जा सके, तो सभ्य समाज की दिव्य संभावनाएँ साकार होते देर न लगेगी।

## कुछ अन्य सूत्र

**त्रिविध शोधन :-** स्वर्गीय परिस्थितियों के अवतरण के लिए, मनुष्य में देवत्व का उदय करने के लिए मनुष्य का त्रिविध- (१.चिंतन, २.चरित्र एवं ३.व्यवहार) शोधन जरूरी है। जो लोग सीधे ही व्यवहार बदलने की कोशिश करते हैं, वे असफल ही होते हैं। जब तक मनुष्य के चिंतन एवं चरित्र का परिष्कार नहीं होगा, तब तक वह अच्छे व्यवहार का दिखावा तो कर सकता है, वह उसका स्वभाव नहीं बन सकता। इसलिए तीनों के शोधन के संयुक्त प्रयास जरूरी हैं।

**हम बदलेंगे-युग बदलेगा :-** परिवर्तन का क्रम स्वयं से शुरू किया जाय, तो परिवर्तन की सतत शृंखला चल पड़ती है। दीप से दीप जलने लगता है। किन्तु

दूसरों को बदलने के प्रयास से शुरुआत की जाय, तो परिवर्तन के प्रयास झगड़े में बदलने लगते हैं। इसीलिए बदलाव या सुधार स्वयं से, अपने से शुरू करके उसे अपनों के माध्यम से विस्तार देने की रीति-नीति अपनानी होगी।

**निवेदन-** युगऋषि द्वारा प्रस्तुत उक्त सभी सूत्र वर्गभेद से परे सबके लिए उपयोगी हैं। यदि कुशलतापूर्वक उन्हें लोगों के सामने रखा जाय, तो वे उनका लाभ जरूर उठायेंगे। इस दिशा में अपनी क्षमता और प्रयास बढ़ाकर हम युग निर्माण की प्रचंड लहर खड़ी कर सकते हैं।

प्रज्ञापुत्र स्तर के प्रत्येक कार्यकर्त्ता को चाहिए कि वह इस दिशा में अपने अध्ययन एवं चिन्तन को इतना प्रखर एवं प्रगाढ़ बनाये कि सामान्य चर्चाओं से लेकर उद्‌बोधनों तक के क्रम में युगऋषि एवं युग निर्माण योजना के सूत्रों का परिचय स्वाभाविक ढंग से उभरने लगे। विभिन्न शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थानों से लेकर तमाम सृजनशील संगठनों के बीच युगऋषि की जन्मशताब्दी के संदर्भ में व्याख्यान मालाओं का क्रम चलाया जा सकता है।

गायत्री तीर्थ शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

मूल्य-५:०० रुपये